International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 58-66

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 58-66
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-09-2018
Accepted: 12-10-2018

डॉ० गटुलाल पाटीदार
वरिष्ठ सहायक आचार्य,
संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ० गटुलाल पाटीदार
वरिष्ठ सहायक आचार्य,
संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

संस्कृत साहित्य में काव्य, महाकाव्य एवं उद्भव विकास

डॉ० गटुलाल पाटीदार

शोध-सारांश

विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना ।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता ।। [1]

अर्थात् विनय के बिना लक्ष्मी कैसी? चंद्रमा के बिना रात्रि कैसी? सत्कवित्व के बिना वाणी में विदग्धता कैसी? निश्चित ही संस्कृत काव्यशास्त्रियों एवं सत्कवियों ने अपनी वाणी की विदग्धता से काव्य-तत्त्व के शब्दार्थ ज्ञानविज्ञान एवं काव्य-लक्षण रूपी मुख्यद्वार पर सत्प्रकाश डाला है, परंतु फिर भी इसको एक स्थान पर उपस्थित करने जा रहा हूं। वैदिक साहित्य में भी अनेकों ऋषि-मुनियों ने काव्य-तत्त्व पर अपना चिंतन मनन मन्त्ररूप में मन्त्रित किया है, तथा संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रीय विशाल परंपरा में भरतमुनि और भामह से लेकर आज तक काव्य, महाकाव्य विषयक विविध लक्षण-भेद-प्रभेदों को प्रतिपादित किया है। तथा उसके जन्म विकास क्रम को भी उद्घाटित किया है। विविध आचार्यों के कथनोपकथन को काव्य शास्त्रीयदृष्टि से पुनः सरल रूप में लिखने का एक आम सा प्रयास ही इस लेख का प्रधान प्रयोजन है। जिससे विद्यार्थी, शोधार्थी, साधारण पाठक काव्य-तत्त्व के विविध विषयों को और कवि कर्म के विषय को समझे। इस लेख में संस्कृत साहित्य क्या है? काव्य के लक्षण, महाकाव्य का लक्षण तथा संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के उद्भव विकास कालक्रम के साथ विस्तार विकास एवं विभिन्न काव्यशास्त्रीय आचार्यों के मत-लक्षणों को भी प्रकाशित किया गया है।

कुट शब्द: संस्कृत साहित्य, काव्य, महाकाव्य, उद्भव विकास

प्रस्तावना

(1) संस्कृत साहित्य क्या है? - "सहितयोर्भावः साहित्यम्" [2] अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों का सहित भाव ही साहित्य है। सहित तात्पर्यार्थ "शब्दार्थौ सहितावेव प्रतीतौ स्फुरतः सदा" [3] अर्थात् शब्द और अर्थ तो सदैव सहभाव से युक्त

होकर ही ज्ञान में स्फुरित होते है, तथा "शब्दार्थयोर्निसर्गसिद्धं साहित्यम्" [4] अर्थात् शब्द और अर्थ का साहित्य तो निसर्ग सिद्ध है। संस्कृत साहित्य एक ऐसी विराट अमूल्य विश्वनिधि है, जिसने न केवल भारत को अपूर्व सम्पदा प्रदान की, अपितु सम्पूर्ण विश्व को कुसुमित, पल्लवित, सुवासित, अलंकृत एवं पुष्पित किया है। संस्कृत भाषा विश्व-साहित्य की प्राचीनतम भाषा है। इसका प्रादूर्भाव भारतवर्ष में ही हुआ है। इस भाषा के प्रादूर्भाव से लेकर आज तक भारतीयों का मनन, चिन्तन, गवेषण एवं अनुभूति समन्वित है, और अक्षुण्ण धारा से प्रवाहित हो रही है। संस्कृत भाषा को देववाणी या सुभारती भी कहा जाता है । "विद्वांसो हि देवाः" विद्वानों को देवता कहते है । इस आधार पर संस्कृत को देवभाषा कहा जाता है। देवताओं को आह्वान करने के लिए मन्त्र आदि इसी भाषा में रचे-बसे है। आचार्य दण्डी के शब्दों में-

> संस्कृत नाम देवी वागन्वाख्याता महर्षिभि: । भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाण भारती।।[5]

संस्कृत साहित्य की परम्यरा का मूल वेद ही है। वेद ही भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। वेदों में मानव समाज की धार्मिक भावनाएँ, आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधाराएँ समाहित है। हमारे वेदचतुष्ट्य विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। वेदों को आधार मानकर महाकवियों ने समय-समय पर अनेक प्रकार के काव्य, महाकाव्य, गद्य-पद्य एवं खण्डकाव्यों की रचना की। महर्षि मनु ने "सर्वज्ञानमयो हि स:।" [6] यह कहकर वेदों को सभी प्रकार के ज्ञान से युक्त कहा है। वेदों में ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका ज्ञान हमें प्राप्त न होता हो महर्षि मनु की यह उक्ति सार्थक है-

> चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा: पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।। [7]

भारतीय प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति के खुले प्रांगण में अदृश्य शक्तियों का अनुभव किया । पृथ्वी पर प्राप्त प्राकृतिक तत्त्वों में ऋषियों ने चेतनता का आरोप किया तथा प्राकृतिक तत्त्वों को देवता मानकर उनकी स्तुति में गीत गाए। ऋषियों द्वारा प्राकृतिक देवता मानकर उनकी स्तुति में जो गीत गाए, यहीं से महाकाव्यों का शुभारम्भ माना जाता है। ऋग्वेद को विश्व साहित्य में सबसे प्राचीनतम ग्रन्थरत्न माना जाता है। यहीं से ही महाकाव्य के मूल बीज हमें प्राप्त होते हैं। प्राकृतिक देवताओं में उषा, वरुण, इन्द्र, विष्णु आदि देवताओं की गेयात्मक, स्तुति सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होती है। देववाणी में रचित प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद भारतीय संस्कृत-साहित्य में महाकाव्य परम्परा का उद्गम स्थल है, तथा यहीं से महाकाव्य परम्परा का उद्गम, विकास एवं विस्तार भी दृष्टिगत होता है।

(2) काव्य का लक्षण- काव्य शब्द की प्रकृति 'कवि' शब्द है । यह शब्द अदादिगणस्य कु+इ धातु से 'कौति' इस त्युत्पत्ति से 'अच इञ्' [8] सूत्र से 'इ' प्रत्यय करने के निष्पन्न हुआ है । इस दृष्टि से जो रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों का उच्चारण करता है वह कवि है। "कवेर्भाव कर्म वा काव्यम्" ऐसी त्युत्पत्ति करने पर कवि शब्द से "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च" [9] सूत्र से 'ष्यञ्' प्रत्यय होकर 'काव्य' शब्द निष्पन्न हुआ अर्थात् कवि के भाव या कर्म को काव्य कहते है। [10] आचार्य दण्डी ने काव्य की परिभाषा इसप्रकार दी है-"शरीरंतावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली" [11] अर्थात् इष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली तो शरीर मात्र है। जयदेव ने चन्द्रलोक में काव्य का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा है-

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषण ।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनाम भाक्।।[12]

अर्थात् गुप्त अलंकार, लक्षण, रीति, रस तथा वृत्ति आदि उपादानों से परिपूर्ण और दोषरहित बारी काव्य है। पण्डितराजजगन्नाथ ने रसगंगाधर में संक्षिप्त एवं सारगर्भित काव्य का लक्षण दिया है- रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । [13] अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है। सर्वप्रथम आचार्य भामह ने सूक्ष्म विवेचना शक्ति से काव्यत्व को प्रतिपादित करते है- "शब्दार्थौ सहितो काव्यम्" [14] अर्थात् सामंजस्यपूर्ण शब्द और अर्थ को काव्य कहते है। वामम ने शब्द और अर्थ को गुण व अलंकार मानकर काव्य का लक्षण दिया है "सदोषगुणालंकारहानादानाम्भाम्" [15] अर्थात् गुणों और अलंकारों से युक्त दोष से रहित शब्द और अर्थ का नाम काव्य है। वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक ने काव्य का लक्षण किया है-

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।[16]

अर्थात शब्द और अर्थ के उस मनोहर विन्यास को काव्य कहते है जो शब्दार्थ की दृष्टि से सन्तुलित एवं व्यवस्थित हो तथा जिसमें आह्लादकारी क्षमता भी हो। मम्मटाचार्य के अनुसार "तददौषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि" [17] अर्थात् दोषरहित, गुणसहित, कहीं-कहीं स्पष्ट अलंकारों से रहित भी (सामान्यतः अलंकार सहित) शब्द-अर्थ की समष्टि काव्य है। वाग्भट्टमतानुसार गुण और अलंकार से अलंकृत स्फुट रीति एवं रस से युक्त साधु शब्दार्थ गुम्फित काव्य है।

साधुशब्दार्थसन्दर्भ गुणालंकार भूषितम्।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये।।[18]

राजशेखर के अनुसार- "गुणवदलंकृतंचकाव्यम्" [19] अर्थात् गुणयुक्त, अलंकारयुक्त और निर्दोष वाक्य ही काव्य होता है । आनन्दवर्धनाचार्य ने स्वकृत धन्यालोक में काव्य की परिभाषा दी है- "सह्रदयह्रदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेवकाव्यलक्षणम्" [20] आचार्य आनन्दवर्धन काव्य की आत्मा ध्वनि को मानते है अर्थात् जो शब्द और अर्थ सह्रदयों के ह्रदयों को आह्लादित करते है वे शब्दार्थ ही काव्य है । महर्षि व्यास के मतानुसार स्फुट अलंकार और गुण से युक्त दोषरहित अभीष्ट अर्थ से युक्त पदावली काव्य है- "काव्यं स्फुटदलंकार गुणावद् दोष वर्जितम्" । [21] महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में वागर्थाविवसम्पृक्तौ [22] कहकर शब्दार्थौ काव्यम् इस प्रकार काव्य का काव्यत्व घटित किया है ।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार कर लक्षण दिया है- "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" [23] अर्थात् रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते है। श्रीचण्डीदास ने काव्य के लक्षण में शब्द को महत्त्व दिया है तथापि रस आस्वाद को ही काव्य का जीवन माना है। यथा- "आस्वादजीवातुः पदसन्दर्भः काव्यम्" । [24]

(3) काव्य के भेद-प्रभेद

संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने इन्द्रिय ग्राह्यता के आधार पर काव्य के द्विविध भेद किए है। आचार्य कविराज विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" [25] इस प्रकार काव्य का लक्षण देते हुए काव्य को दो भागों से विभक्त किया है। यथा- "दृश्य-श्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्" [26]

(क) श्रव्यकाव्य

ऐसे काव्य जिनमें पाठकों को श्रवण तथा पठन के द्वारा काव्यानन्द की प्राप्ति होती है, उसे श्रव्यकाव्य कहते है। श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं । [27] इसके पुनः तीन भेद हैं-(i) गद्यकाव्य, (ii) पद्यकाव्य (iii)

मिश्र (चम्पूकाव्य) इसके भेद-उपभेदों को काव्यशास्त्रियों ने निरूपण किया हैं।

(ख) दृश्यकाव्य

जिन काव्यों की रचना रंगमंच पर अभिनय के उद्देश्य से की जाती है तथा जिसका हृदय दर्शक चक्षुओं एवं श्रवणेन्दियों के द्वारा आनन्द प्राप्त कर सकता वह दृश्यकाव्य है। यथा- "दृश्य तत्राभिनेयं तद्रुपारोपान्तुरूपकम्।"[28] और भी "अवस्थानुकृतिर्नाट्यं" [29] उस दृश्यकाव्य के पुनः दो भेद किये हैं- रूपक (10 भेद) और उपरूपक (18 भेद) । इनको पुन: उपभेदों में विभक्त किया गया है । रूपक के ये भेद है-

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।
व्यायोगसमवकारौ वीच्यंकेहामृगा इति ।। [30]

आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन भेद माने है- उत्तमकाव्य- वह काव्य जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण हो उसे उत्तम काव्य कहते है । "इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्येवाच्याद् ध्वनिर्बुधै: कथितः।" [31] मध्यकाव्य- जिस काव्य में व्यंग्यार्थ गौण रहता है तथा वाच्यार्थ ही विशेष प्रभाव (चमत्कार) उत्पन्न करता है,उसे मध्यम काव्य अथवा गुणीभूत व्यंग्यकाव्य कहा जाता है। यथा-"अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं तु मध्यमम्" । [32] अधम काव्य- इस प्रकार के काव्य से व्यंग्यार्थ का अभाव रहता है । यह चित्रकाव्य एवं अर्थचित्रकाव्य के भेद से दो प्रकार का होता है। "शब्दं चित्रं वाच्यचित्रव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्" । [33]

(4) महाकाव्य के लक्षण

महाकाव्य की परिगणना श्रव्यकाव्य की कोटि में की जाती है। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य इन दो सार्थक पदों के समास से बना है। विस्तृत अर्थ विस्तृत कलेवर वाले काव्य से है। अंग्रेजी में महाकाव्य को ही एपिक कहा जाता है जिसका अर्थ है- शब्द । कालान्तर में एपोस का प्रयोग गीत के लिए होने लगा। अन्ततः यह शब्द वीरकाव्य के लिए प्रयुक्त हुआ। विभिन्न आचार्यों एवं काव्यशास्त्रियों ने इसके स्वरूप को निर्धारित करते हुए निम्नलिखित लक्षण किया है- वे इस प्रकार हैं–

(i) आचार्य भामह- आचार्य भामह ने ही सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षण को परिलक्षित किया है। तदानुसार ही विभिन्न कवियों और काव्यशास्त्रियों ने लक्षणों को बतलाया हैं। आचार्य भामह ने महाकाव्य के लक्षण के विषय में कहते है कि महाकाव्य में नायक का अभ्युदय होता हुआ दर्शाना चाहिए। महाकाव्य में अग्राम्य शब्द एवं अर्थों का प्रयोग होना चाहिए । महाकाव्य की भाषा सरल, स्पष्ट एवं व्याख्यात्मक होनी चाहिए। महाकाव्य में नायक के अलावा मंत्री, दूतों आदि पात्रों का समावेश हो। आश्रयदाता की वीरता का वर्णन किया जाना चाहिए । महाकाव्य में सकल रस समन्वित होना चाहिए । आचार्य भामह महाकाव्य लक्षण पर कहते है, यथा-

सर्गबन्धो महाकाव्यं महताञ्च महच्च यत् ।
अग्राम्यशब्द्यमर्थ्यञ्च सालंकार सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत् ।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।।
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत् ।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ।।
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः ।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।[34]

(ii) आचार्य दण्डी

महाकवि दण्डी महाकाव्य के लक्षण विषय पर इस प्रकार कहते है कि महाकाव्य की कथा नितान्त काल्पनिक नहीं होनी चाहिए अपितु पौराणिक आख्यान अथवा ऐतिहासिक कथानक को ही कवि ग्रहण करे, जिससे सज्जनों का चरित्र-चित्रण प्राप्त होता है । महाकाव्य में मुख-प्रतिमुख आदि पञ्च

सन्धियों का समावेश होना चाहिए, अलंकारों का भी यथा सम्भव काव्य में प्रयोग होना चाहिए, पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में से एक अथवा अनेक की प्राप्ति ही महाकाव्य का उद्देश्य होना चाहिए, महाकाव्य का नायक क्षत्रिय कुलोत्पन्न होना चाहिए । और भी यथा-

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोवापि तन्मुखम् ।।
विप्रलम्भैः विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनै: ।
मन्त्रदूत प्रयाणानि नायकाभ्युदयैरपि ।।
इतिहास कथोद्भतमिरद वा रसाश्रयम ।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोददात्तनायकम् ।।
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसाभाव निरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभि: ।।
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्राकोदयवर्णनै: ।
उद्यानसलिल क्रीडा मधुपान रतोत्सवै: ।।
सर्वत्र भिननावृत्तान्तै रूपेतं लोकरञ्जकम् ।
काव्यं कलपान्तरस्यायि जायते सदलंकृति।।[35]

(iii) आचार्य विश्वनाथ कविराज

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में क्षत्रिय से भिन्न जाति का भी धीरोदात्तादिगुण सम्पन्न नायक हो सकता है, महाकाव्य में वीर, शृंगार के अतिरिक्त शान्तरस भी हो सकता हैं महाकाव्य में खलादि की निन्दा और सज्जनों के गुणों का कीर्तन होना चाहिए । संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नरक, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र एवं अभ्युदय आदि का समस्त अंगों सहित वर्णन होना चाहिए । और भी यथा-

सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायक: सुर: ।
सद्वश: क्षत्रियोवापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपा: कुलजा बहवोऽपि वा ।।
शृंगार वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
अंगानि सर्वेऽपि रसा: सर्वे नाटकसन्धय: ।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।
एकवृत्तमयै: पद्यैरवसानेऽन्यवृत्रकैः ।
नातिस्यल्पा नातिदीर्घा: सर्गा अष्टाधीका इह।।
नानावृत्रमय: क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्यः कथाया: सूचनं भवेत्।।
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासरा: ।
प्रातमंध्याह मृगयाशैलर्तुवनसागरा: ।।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा: ।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।। [36]

महाकाव्य लक्षण के लिए भारतीय आचार्यों के समान ही पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ विशिष्ट परिभाषाएँ इस प्रकार दी हैं- फ्रेन्च विद्वान लीबसु के मतानुसार- "महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक ।" लार्ड केम्पस के अनुसार- "महाकाव्य वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन है" । होंब्स के अनुसार "कविता को ही महाकाव्य कहते हैं" । सुप्रसिद्ध समालोचक बावरा के अनुसार- "सर्वसम्मति महाकाव्य वह कथात्मक रूप है जिसका आकार बृहद् होता है, जिसमें महत्त्वपूर्ण एवं गरिमापूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है और जिससे कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन कथा होती है, उसे पढ़ने के पश्चात् विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है । क्योंकि उसके-पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता, गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं । एबर क्राम्नी के मतानुसार- बृहत् आकार के होने के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं बन सकता है। महाकाव्य की शैली ही उसे महाकाव्य बना सकती है और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति से खुली रहती है। इस शैली के

काव्य हमें ऐसे लोक में पहुँचा देते हैं, जहाँ कुछ भी महत्त्वहीन नहीं रह जाता है । महाकाव्य के भीतर एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यात संचालन करता है।

सारांश रूप में पाश्चात्य महाकाव्य में लक्षण इस प्रकार हैं- महाकाव्य का नायक राष्ट्र एवं जाति का प्रतिनिधि होता है, जिसके द्वारा राष्ट्र एवं जाति की विजय प्रदर्शित की जाती है। महाकाव्य का कार्य और पात्र महान् होते है। समस्त काव्य उत्कर्ष पर्यवसायी होता है। विषय परम्परा प्रतिष्ठित, लोकप्रचलित या राष्ट्रीय होती है। घटनाओं का बाहुल्य होने के कारण कथानक शिथिल होता है। महाकाव्य में अनियन्त्रित, असम्भव एवं अद्भुत तत्त्व अधिक होते हैं। महाकाव्य एक बृहताकार प्राक्कथन प्रधान काव्य होता है, जिसकी शैली की महत्ता होती है। छन्द प्रायः ही होता है और वीररस की प्रचुरता रहती है । महाकाव्य में वीर रस की प्रधानता एवं संघर्षता की प्रमुखता रहती है।

भारतीय महाकाव्य एवं पाश्चात्य महाकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन करने पर विदित होता है कि कुछ लक्षणों में तो भारतीय एवं पाश्चात्य महाकाव्य समान हैं, परन्तु कतिपय: तत्त्व ऐसे है जो उन्हें भिन्नता प्रदान करते हैं, ये निम्नलिखित हैं- भारतीय महाकाव्य में मंगलाचरण का विधान होता है परन्तु पाश्चात्य महाकाव्य में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। भारतीय महाकाव्यों में वीर, शान्त और शृंगार में से एक रस प्रमुख होता है, वही पाश्चात्य महाकाव्यों में केवल वीर रस ही प्रधान होता हें। भारतीय महाकाव्यों का कथानक चुस्त एव कसाव लिए हुए होता है, वहीं पाश्चात्य महाकाव्यों का कथानक शिथिल होता है। पाश्चात्य महाकाव्य में केवल वीररस प्रधानता होता है, वहीं भारतीय महाकाव्य छन्द प्रयोग में पूर्ण स्वतंत्र है। भारतीय महाकाव्यों में प्राकृतिक चित्रण का विशेष स्थान होता हैं, परन्तु पाश्चात्य महाकाव्यों में इसका प्रायः अभाव सा रहता हैं। पाश्चात्य महाकाव्यों की कथावस्तु यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित होती है वही भारतीय महाकाव्यों की कथावस्तु काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक दोनों प्रकार की हो सकती है। पाश्चात्य महाकाव्य का नायक राष्ट्र एवं जाति का प्रतिनिधि होता हैं। जिसके द्वारा राष्ट्र एवं जाति की विजय प्रदर्शित की जाती है। वहीं भारतीय महाकाव्य के नायक के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है वह मात्र धीरोदात्त गुणों से युक्त होना चाहिए।

(5) संस्कृत महाकाव्य का शुभारम्भ

काव्य विद्वानजनों के हृदय में अवतरित मधुर कल्पनाओं एवं उद्रेकमयी भावनाओं का पद्यात्मक रूप है। ऐसे तो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय-सागर में भावनाएँ हिलोरें लेती है, लेकिन कुछ विरले व्यक्ति होते है जो वाल्मीकिवत्- "श्लोकः श्लोकत्मागतः" [37] की भांति अपनी भावनाओं के ज्वार को शब्दों में अभिव्यक्त करने में समर्थ होते है। इस प्रकार काव्य का व्यक्ति के बाहय एव अन्तर्जगत से गहरा सम्बन्ध है। वह मानव के जीवन में रंग भरता हुआ उसे सदा चिरनवीन बनाता है।

संस्कृत काव्य की झलक सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद ने मिलती है। ऋग्वेद में ऐसे कई मन्त्र है जिनमें उनके रचयिता कवि प्रतिमा का परिचय देते है, किन्तु संस्कृत साहित्य जिन्हें हम वास्तविक काव्यशैली कहते है, उसका पूर्ण परिपाक वैदिककाल में नहीं माना जा सकता। ब्राहमण ग्रंथों में कुछ स्थलों पर और इतिहास पुराण में सुपर्णाध्याय: नामक आख्यान में काव्य की आभा स्पष्ट प्रतीत होती है। परन्तु वस्तुत: संस्कृत का आदि महाकाव्य वाल्मीकिकृत रामायण ही है, यही उस काव्यधारा का उद्गम स्थल है जो महाकवि भास, कालिदास से लेकर आज तक कविजन विभिन्न स्त्रोतों से संस्कृत काव्य को सिञ्चते चले आ रहे हैं। आदिकाव्य की भांति वीरकाव्य महाभारत में भी काव्य शैली स्पष्ट परिलक्षित होती है।

काव्यालंकारसूत्र के टीकाकार नमिसाधु लिखते है कि स्वय पाणिनि (400 ई.पू.) ने पाताल-विजय और

जाम्बवती-विजय नामक दो काव्यों की रचना की थी। पतंजली (150 ई.पू.) अपने महाभाष्य में काव्य-साहित्य से पूर्ण परिचय करवाते है। एक और वे अपना भारत से परिचय प्रकट करते है तो दूसरी और वे कंसवंध और बलिबन्ध नामक नाटकों का निर्देश करते है,जहाँ से वे वररूचकाव्य, वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी आख्यायिकाओं का उल्लेख करते है वहाँ वे काव्य-शैली में रचित पद्यो की कतिपय पंक्तियाँ भी उद्धृत करते है। यद्यपि ये रचनाएँ उपलब्ध नही है, फिर भी उनके नामोल्लेख से यह सिद्ध होता है कि ई.पू. द्वितीय शताब्दी से बहुत पहले काव्य-साहित्य की विभिन्न शाखाओं- महाकाव्य,गीतिकाव्य, लोककथा, नीतिकथा तथा नाटक का पूर्ण प्रचार-प्रसार विकसित हो चुका था।

(6) शिलालेखों में अलंकृत काव्य [38] ईसा की प्रथम शताब्दी के आस-पास कुछ ऐसे शिलालेख मिलते हैं, जिनकी भाषा शैली देखने से पता चलता है कि उस समय तक काव्य साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। उदहारण रूप में प्रस्तुत है-

(i) रुद्रादामन का गिरनालवाला शिलालेख- यह 150 ई.पू. अलंकृत काव्यशैली का नमूना है उस पर उल्लेख-

"स्कूटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृतगद्यप द्य" समास से यह विदित होता है कि लेखक किसी प्राचीन अलंकार शास्त्र से परिचित था।

(ii) प्रयाग के अशोक-स्तम्भ- इस स्तम्भ पर खुदी हरिषेणकृत्त समुद्रगुप्त की प्रशस्ति की शैली इस बात की स्पष्ट सूचना देती है कि उसके पूर्व अनेक महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी।

(iii) गुप्त काल के अन्य शिलालेखों से यह प्रमाणित होता है कि काव्य की प्रगति अखण्ड रूप से ओर अबाध गति से होती आई है। यदि दीर्घकाल तक किसी काव्य का पता ही नही चलता तो इसका अर्थ यह नहीं कि उस काल में काव्य श्री प्रगति रूक गई थी । इसका वास्तविक कारण यह है कि कुछ काव्यों की प्रसिद्धि इतनी अधिक हुई कि उनसे पहले के कम प्रसिद्ध काव्य विस्मृत हो गये।

(7) संस्कृत महाकाव्य का विकास

वेदसंहिता के पश्चात् संस्कृत साहित्य की काव्यधारा का उद्गम स्थल मुख्यत: आदिकाव्य रामायण तथा वीरकाव्य महाभारत ही हैं। महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि और उनकी कृति रामायण संस्कृत का आदि महाकाव्य है। इसकी रचना के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि- क्रोञ्च पक्षी मिथुन में से निषाद के द्वारा एक का वध करने से उत्पन्न दूसरे के विलाप की करुणा से कवि का मर्म बिंध गया और अचानक उनके मुख से निषाद के लिए श्लोक के रूप में करुण रस की धारा का उद्गार व्यक्त हुआ, यहीं से लौकिक महाकाव्यों की परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है। यथा-

> मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती: समा: ।
> यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।[39]

उपुर्यक्त पद्य अनुष्टुप् छन्द समाक्षर से युक्त एवं प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है। आदिकवि वाल्मीकि का यह श्लोक संस्कृत काव्य का प्रथम श्लोक है और इसी से महाकाव्य की परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ है। इस युग में महाकाव्य या काव्य लक्षण विषय पर भी वाल्मीकि कहते है-

> अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः ।
> छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्।।[40]

रामायण के पश्चात् महर्षि वेदव्यास विरचित वीरकाव्य महाभारत में भी महाकाव्यों के बीज दृष्टिगोचर होते हैं। अत: रामायण और महाभारत

संस्कृत काव्य के आदि महाकाव्य / उपजीव्य महाकाव्य अथवा आर्ष महाकाव्य कहे जाते है । संस्कृत के महाकाव्यों के लिए ये दोनों ग्रन्थरत्न उपजीव्य है । रामायण को विद्वानों ने सर्वसम्मति के संस्कृत का आदि महाकाव्य घोषित किया है, और इसी महान् ग्रन्थ के आधार पर आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किए है । इस प्रकार रामायण से काव्य पद्धति को तथा महाभारत से विविध विषयो अर्थात् "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्" [41] को आधार मानकर भारतीय कवियों ने विशाल काव्य साहित्य की रचना की है।

विकास कालक्रम से सर्वप्रथम कविशिरोमणि कालिदास के नाम का उल्लेख होता है, तत्पश्चात् अश्वघोष का नाम सुप्रसिद्ध है। महाकवि कालिदास के दो महाकाव्य हैं- रघुवंश एवं कुंमारसम्भव और दो खण्डकाव्य- मेघदूत व ऋतुसंहार अतिप्रसिद्ध है। महाकवि कालिदास के पश्चात् अश्वघोषकृत बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द महाकाव्य हैं। इस प्रकार उत्तरकाल में कविता-कामिनी में विद्वत्ता के संचार का श्रेय महाकवि भारविकृत (520ई.-600 ई.) किरातार्जुनीयम् को जाता है। भट्टिकाव्य (580 ई.-641ई.) रावणवधम्, कुमारदासकृत (7वीं शताब्दी) जानकीहरणम्, माघकृत (लगभग675 ई.) शिशुपालवधम्, श्रीहर्षकृत (1163-1174ई.) नैषधीयचरितम्, कविराजकृत (1182-1197ई) माधव भट्ट । इस प्रकार 12वीं शताब्दी से लेकर अनेक परवर्ती कवियों ने पूर्ववर्ती पोषण महाकवि कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, हर्ष, कुमारदास आदि कृत रचनाओं से और प्रमुख ग्रन्धरत्न- रामायण व महाभारत से प्रभावित होकर एवं उपजीव्य लेकर नूतन काव्य सृजित कर संस्कृत साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया है। यह प्रार्थनीय व स्तुत्य है।

(8) शोध-निष्कर्ष

गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः।।[42]

अर्थात् गुरु के उपदेश से शास्त्र का अध्ययन तो जड़मति भी कर सकते हैं, परंतु काव्यत्व तो कभी किसी प्रतिभावान को ही प्राप्त होता है। निश्चित ही संसार में कविता को प्राप्त करना दुर्लभ है और कवित्व को प्राप्त करना अतिदुर्लभ । संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने जो काव्य, महाकाव्य के लक्षण एवं भेद-प्रभेदों के विषयक पर अपना चिंतन प्रस्तुत किया है, वह निश्चित ही उनके असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करता है। संस्कृत काव्य परंपरा का उद्गम स्थल वेद ही है। जो देवताओं की स्तुति में गीत गाए गए हैं, वहीं से काव्य तत्त्व धारा के प्रथम दर्शन हो जाते हैं। उषा, वरुण, इन्द्र, विष्णु इत्यादि देवताओं की स्तुति काव्यात्मक शैली में की गई है। बाद में रामायण और महाभारत इसी महाकाव्य के आदर्श ग्रंथरत्न कहे जा सकते है। लक्षण ग्रंथ में भरत भामह ही आदर्श कविरत्न माने जा सकते हैं। इस प्रकार यह एक विराट परंपरा रही है, जिसमें आज भी काव्य महाकाव्य के लक्षण ग्रंथ लिखे-रचे जा रहें हैं ।

सन्दर्भ-ग्रथ-सूची

1. काव्यालंकार-1/4
2. वक्रोक्तिजीवितम्-1/17 के बाद का वृत्ति भाग
3. वक्रोक्तिजीवितम्-1/16
4. वक्रोक्तिजीवितम्-1/16 के बाद का वृत्ति भाग
5. काव्यादर्श- 1/8
6. मनुस्मृतिः -2/7
7. मनुस्मृतिः-12/ 97
8. अष्टाध्यायी-4/1/95
9. अष्टाध्यायी-5/1/124
10. सिद्धान्तकौमुदी,पृ.सं.-346,635
11. काव्यादर्श-1/4

12. चंद्रालोकः-1/7
13. रसगंगाधर-1/1
14. काव्यालंकार-1/16
15. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति-1/1/1-3
16. वक्रोक्तिजीवितम्-1/7
17. काव्यप्रकाश:-1/4
18. वाग्भटालंकार-1/2
19. काव्यमीमांसा-1/6/3
20. ध्वन्यालोक:-3/1
21. अग्निपुराणम्-पृ.सं.-337
22. रघुवंशम्-1/1
23. साहित्यदर्पण-1/3
24. काव्यप्रकाशदीपिका-2/7
25. साहित्यदर्पण-1/3
26. साहित्यदर्पण-6/1
27. साहित्यदर्पण-6/313
28. साहित्यदर्पण-6/1
29. दशरूपकम्-1/7
30. दशरूपकम्-1/8
31. काव्यप्रकाशः-1/2
32. काव्यप्रकाशः-1/3
33. काव्यप्रकाशः-1/4
34. काव्यालंकार-1/19-22
35. काव्यादर्शः - 1/14-19
36. साहित्यदर्पण-6/315
37. ध्वन्यालोकः-1/5
38. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं.- 28
39. रामायण (वाल्मीकि),बालकाण्ड-2/15
40. महाभारत(आदिपर्व)-1/28
41. महाभारत(आदिपर्व)-62/53
42. काव्यालंकार-1/5